प्रथमा विभक्ति

प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा (2/3/46)

नियतोपस्थितिकः प्रातिपदिकार्थः। मात्रशब्दस्य प्रत्येकं योगः। प्रातिपदिकार्थमात्रे लिङ्गमात्राधिक्ये परिमाणमात्रे संख्यामात्रे च प्रथमा स्यात्। उच्चैः। नीचैः। कृष्णः। श्रीः। ज्ञानम्। अलिङ्गा नियतलिङ्गाश्च प्रातिपदिकार्थमात्र इत्यस्योदाहरणम्। अनियतलिङ्गास्तु लिङ्गमात्राधिक्यस्य। तटः-तटी-तटम्। परिमाणमात्रे द्रोणो व्रीहिः। द्रोणरूपं यत्परिमाणं तत्परिच्छिन्नो व्रीहिरित्यर्थः। प्रत्ययार्थे परिमाणे प्रकृत्यर्थोऽभेदेन संसर्गेण विशेषणम्, प्रत्ययार्थस्तु परिच्छेद्यपरिच्छेदकभावेन व्रीहौ विशेषणमिति विवेकः। वचनं सङ्ख्या। एकः। द्वौ। बहवः। इहोक्तार्थत्वाद् विभक्तेरप्राप्तौ वचनम्।

प्रातिपदिकार्थ मात्र, लिङ्ग मात्र, परिमाण मात्र तथा वचन मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है।

प्रातिपदिकार्थ पाँच प्रकार का होता है—जाति (सत्ता), द्रव्य (व्यक्ति), लिङ्ग, संख्या और कारक। किन्तु प्रकृत सूत्र में प्रातिपदिकार्थ से पञ्चक के स्थान पर केवल द्विक—जाति और व्यक्ति—का ही ग्रहण होता है, क्योंकि सूत्र में लिङ्ग एवं संख्या (वचन) का पृथक् निर्देश किया गया है। अतएव प्रातिपदिकार्थ का आशय है—नियत रूप से उपस्थित होने वाला पदार्थ अर्थात् किसी शब्द के उच्चारण से जो अर्थ नियमतः उपस्थित (प्रतीत) होता है उसे प्रातिपदिकार्थ कहते हैं। प्रातिपदिक के उच्चारण से जाति और व्यक्ति ही नियमतः उपस्थित होते हैं, लिङ्ग, संख्या और कारक नहीं क्योंकि कहीं पुल्लिङ्ग तो कहीं स्त्रीलिङ्ग, कहीं एकत्व तो कहीं द्वित्व संख्या, कहीं कर्त्ता कारक तो कहीं कर्म कारक आदि की प्रतीति होती है।

प्रातिपदिक का अर्थ है शब्द (Base या Crude form)। प्रत्येक शब्द का कुछ नियत अर्थ होता है। परन्तु संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार जब तक प्रातिपदिक (शब्द) में विभक्ति-प्रत्यय लगा कर पद न बना लिया जाय, तब तक उससे अर्थ बोध नहीं होता। अतएव प्रतिपादिक का केवल अर्थ बोध कराना हो तो प्रथमा विभक्ति लगाते हैं। यथा—केवल 'बालक' कहने पर संस्कृत भाषा में यह शब्द निरर्थक होगा। इसका अर्थज्ञान कराने के लिये प्रथमा विभक्ति लगानी पड़ेगी—बालकः। इस प्रकार प्रथमा विभक्ति का प्रयोग प्रायः शब्द का अर्थ बताने के लिये ही किया जाता है।

मात्रशब्दस्येति–सूत्रस्थ 'मात्र' शब्द का सम्बन्ध प्रत्येक शब्द के साथ है। 'द्वन्द्वान्ते श्रूयमाणं पदं प्रत्येकम् अभिसम्बध्यते' वचन के अनुसार द्वन्द्व समास के अन्त में प्रयुक्त शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ सम्बन्ध होता है। यहाँ 'प्रातिपदिकार्थश्च लिङ्गं च परिमाणं च वचनं च इति प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनानि' द्वन्द्व समास होने के कारण इसके अन्त में प्रयुक्त 'मात्र' शब्द का सम्बन्ध प्रत्येक के साथ होकर प्रातिपदिकार्थ मात्र, लिङ्ग मात्र, परिमाण मात्र और वचन मात्र में प्रथमा विभक्ति होती है, इस अर्थ का बोध होता है।

केवल लिङ्ग की उपस्थिति असम्भव है अतएव लिङ्गमात्र का तात्पर्य है—जहाँ प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त लिङ्ग की भी अधिकता हो। इसी प्रकार 'परिमाण मात्र' का भी तात्पर्य है—जहाँ प्रातिपदिकार्थ के अतिरिक्त परिमाण की भी अधिकता हो।

प्रातिपदिकार्थ मात्र के उदाहरण हैं—उच्चैः (ऊँचा), नीचैः (नीचा), कृष्णः (वासुदेव), श्रीः (लक्ष्मी) और ज्ञानम् (ज्ञान)। इन सभी उदाहरणों में प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति हुई। उच्चैः और नीचैः अव्यय होने के कारण अलिङ्ग (लिङ्ग रहित) शब्द हैं तथा कृष्णः (पुं0), श्रीः (स्त्री0), ज्ञानम् (नपुं0) नियतलिङ्ग (जिनका लिङ्ग निश्चित हो कि यह केवल पुल्लिङ्ग होता है, यह केवल स्त्रीलिङ्ग होता है या यह केवल नपुंसक लिङ्ग होता है) शब्द हैं। अलिङ्ग एवं नियतलिङ्ग शब्द ही प्रातिपदिकार्थमात्र के उदाहरण होते हैं।

लिङ्गमात्र का उदाहरण—केवल अनियतलिङ्ग (जिनका लिङ्ग निश्चित न हो) शब्द ही लिङ्गमात्राधिक्य के उदाहरण हैं। यथा—तटः, तटी, तटम्। तट शब्द का तीनों लिङ्गों में रूप उपलब्ध होने के कारण अर्थात् एक लिङ्ग नियत न होने के कारण प्रातिपदिकार्थ में अन्तर्भाव नहीं हो सकता। अतएव यहाँ प्रातिपदिकार्थ (जाति और व्यक्ति) के साथ-साथ लिङ्ग मात्र अर्थ का भी बोध होता है। इस प्रकार यहाँ 'तटः'

में प्रयुक्त प्रथमा विभक्ति से 'किनारा' अर्थ एवं 'पुल्लिङ्ग' दोनों का बोध होता है।

परिमाण मात्र का उदाहरण—'द्रोणो व्रीहिः' (द्रोण परिमाण भर धान) यहाँ द्रोण शब्द से परिमाण अर्थ में प्रथमा विभक्ति हुई है। 'द्रोण' परिमाण विशेष है और 'व्रीहि' व्यक्ति (द्रव्य)। अतः दोनों में धर्म-धर्मी भाव होने के कारण अभेदान्वय नहीं हो सकता। फलतः 'द्रोण परिमाण' और 'व्रीहि व्यक्ति' में परिच्छेद्य-परिच्छेदक भाव (द्रोण परिमाण से नपा हुआ व्रीहि) अन्वय उपपन्न होता है। (द्रोणः = परिच्छेदक, विशेषण; व्रीहिः = परिच्छेद्य, विशेष्य) यहाँ 'द्रोण' (प्रकृति) का अर्थ है 'द्रोण परिमाण-विशेष' और 'प्रथमा-विभक्ति' (प्रत्यय) का अर्थ है 'परिमाण-सामान्य'। अतः इनका 'द्रोण रूप परिमाण' यह अभेदान्वय होता है। द्रोण (परिमाण-विशेष) अभेद संसर्ग से परिमाण-सामान्य (प्रत्ययार्थ) का विशेषण है और परिमाण-सामान्य परिच्छेद्य-परिच्छेदक भाव से व्रीहि का विशेषण है।

वचन मात्र का उदाहरण—वचन का अर्थ है संख्या। संख्यावाचक शब्द से संख्या अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। यथा—एकः, द्वौ, बहवः। यहाँ एक, द्वि इत्यादि संख्यावाची शब्दों से ही संख्या का बोध हो जाता है, अतः संख्या अर्थ में 'विभक्ति' प्राप्त नहीं होती। किन्तु 'अपदं न प्रयुञ्जीत' (बिना पद बने शब्द का प्रयोग नहीं होना चाहिये) नियम के अनुसार केवल प्रातिपदिक (एक, द्वि आदि) का प्रयोग नहीं हो सकता। अतः प्रकृत सूत्र से प्रथमा विभक्ति का विधान किया गया है। इस प्रकार यहाँ प्रथमा विभक्ति के द्वारा प्रातिपदिकार्थ (संख्या) का अनुवाद होता है और उनमें परस्पर अभेद अन्वय हो जाता है।

सम्बोधने च (2।3।47)

इह प्रथमा स्यात्। हे राम!

सम्बोधन अर्थ में भी प्रातिपदिक से प्रथमा विभक्ति (सु औ जस्) होती है। यथा—हे राम !

कारके (1।4।23)

इत्यधिकृत्य।

यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार 'तत्प्रयोजको हेतुश्च' 1।4।55 तक जाता है। कारक शब्द के अपादानादि का विशेषण (अपादान कारक, सम्प्रदान कारक, करण कारक आदि) होने के कारण प्रकृत सूत्र संज्ञा सूत्र भी है। सूत्र सात प्रकार के होते हैं—अधिकार, संज्ञा, परिभाषा, विधि, निषेध, नियम और अतिदेश।

❐

द्वितीया विभक्ति

कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म (1।4।49)

कर्त्तुः क्रियया आप्तुमिष्टतमं कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्यात्। कर्त्तुः किम्? माषेष्वश्वं बध्नाति। कर्मण ईप्सिता माषाः न तु कर्त्तुः। तमब्ग्रहणं किम्? पयसा ओदनं भुङ्क्ते। 'कर्म' इत्यनुवृत्तौ पुनः कर्मग्रहणमाधारनिवृत्त्यर्थम्। अन्यथा गेहं प्रविशतीत्यत्रैव स्यात्।

(कर्त्तुः + ईप्सिततमम् + कर्म) कर्त्ता अपनी क्रिया के द्वारा जिस पदार्थ को सबसे अधिक प्राप्त करना चाहता है, उसकी कर्म कारक संज्ञा होती है।[1]

कर्त्तुः किम्? सूत्र में 'कर्त्तुः' पद का प्रयोग क्यों किया गया? केवल 'ईप्सिततमं कर्म' कहने से 'माषेष्वश्वं बध्नाति' (उड़द के खेत में घोड़ा बाँधता है) में अश्व (कर्म कारक) का ईप्सित 'माष' होने के कारण उसकी कर्म संज्ञा प्राप्त होने लगेगी, जो अभीष्ट नहीं है। 'माष' कर्त्ता का ईप्सित नहीं है, बन्धन व्यापार में कर्त्ता का ईप्सित तो 'अश्व' है। अतः 'अश्व' की ही कर्म संज्ञा होगी।

तमब्ग्रहणं किम्? सूत्र में तमप् प्रत्ययान्त पद का प्रयोग क्यों किया, केवल 'कर्त्तुरीप्सितं कर्म' ऐसा क्यों नहीं कहा? तात्पर्य यह है कि कर्त्ता क्रिया-विशेष के द्वारा जिस पदार्थ को सबसे अधिक चाहता है उसी की कर्म संज्ञा होती। 'कर्त्तुरीप्सितं कर्म' कहने से यदि एक ही क्रिया से सम्बद्ध अनेक पदार्थ कर्त्ता के द्वारा अभीष्ट हों तो उन सबकी कर्म संज्ञा प्राप्त होने लगेगी। यथा—'पयसा ओदनं भुङ्क्ते' (दूध से भात खाता है) में कर्त्ता को भोजन व्यापार में दूध एवं भात दोनों ही अभीष्ट हैं, पर कर्त्ता भोजन क्रिया में सबसे अधिक भात चाहता है, दूध नहीं, क्योंकि दूध तो भोजन क्रिया में सहायक (संस्कारक) है।

'कर्म' इत्यनुवृत्तौ–सूत्र में कर्म पद का प्रयोग क्यों किया गया? 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' (अष्टाध्यायी 1।4।46) सूत्र. से 'कर्म' की अनुवृत्ति आती है। अतः केवल 'कर्त्तुरीप्सिततमं' ही पर्याप्त था। इसका उत्तर यह है कि सूत्र में कर्म पद का प्रयोग आधार की निवृत्ति के लिये किया गया है। तात्पर्य यह है कि 'अधिशीङ्स्थासां कर्म' में 'आधारोऽधिकरणम्' (1।4।45) से 'आधारः' की भी अनुवृत्ति आती है। अतः प्रकृत सूत्र में 'कर्म के साथ 'आधार'के भी अनुवृत्त होने से 'आधार' का भी बोध होने लगेगा। इस प्रकार कर्त्ता के आधारभूत ईप्सिततम पदार्थ की कर्म संज्ञा होगी, केवल कर्त्ता के ईप्सिततम पदार्थ की नहीं और तब जहाँ आधार एवं कर्म एक ही होंगे वहीं कर्म माना जा सकेगा, अन्य स्थलों में नहीं। यथा—गेहं प्रविशति (घर में प्रवेश करता है)।

अनभिहिते (2।3।1)

इत्यधिकृत्य।

यह अधिकार सूत्र है। इसका अधिकार सामान्यतया 2।3।73 तक है पर यह विशेषतः कारक विभक्तियों में ही प्रवृत्त होता है। उपपद विभक्तियों में अनावश्यक होने से इसकी प्रवृत्ति नहीं होती। अनभिहित का अर्थ है अकथित अथवा अनुक्त अथवा अनिर्दिष्ट। प्रश्न उठता है किसके द्वारा अनभिहित? यहाँ तिङ्, कृत्, तद्धित एवं समास के द्वारा अनभिहित ग्रहण किया जाता है। तात्पर्य यह है कि अनभिहित कर्म आदि कारकों में कही जाने वाली विभक्तियाँ होती हैं।

कर्मणि द्वितीया (2।3।2)

अनुक्ते कर्मणि द्वितीया स्यात्। हरिं भजति। अभिहिते तु कर्मणि प्रातिपदिकार्थमात्रे इति प्रथमैव। अभिधानं च प्रायेण तिङ् कृत्तद्धितसमासैः। तिङ्-हरिः सेव्यते। कृत्-लक्ष्म्या सेवितः। तद्धित-शतेन क्रीतः शत्यः। समास-प्राप्तः आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः। क्वचिन्निपातेनाभिधानम्। यथा-'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्'। साम्प्रतमित्यस्य हि युज्यत इत्यर्थः।

अनुक्त (किसी के द्वारा न कहे हुए) कर्म में द्वितीया विभक्ति होती है।

हरिं भजति (भक्त हरि को भजता है)—यहाँ कर्त्ता 'भजन' क्रिया के द्वारा 'हरि' को सबसे अधिक प्राप्त करना चाहता है। अतः 'कर्त्तुरीप्सिततमं कर्म' सूत्र से 'हरि' की कर्म संज्ञा होती है। यहाँ भजति (भज् + तिप्) क्रिया में तिप् प्रत्यय 'कर्त्ता' अर्थ में लगा है। अतएव कर्त्ता उक्त है और कर्म अनुक्त। इसलिये 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से अनुक्त कर्म 'हरि' में द्वितीया विभक्ति हो गयी।

क्रिया में जिस अर्थ में प्रत्यय लगता है वह उक्त (अभिहित, वाच्य) होता है, उसके अतिरिक्त अन्य सब अनुक्त (अनभिहित) होता है। यदि क्रिया में कर्त्ता अर्थ में प्रत्यय लगेगा तो कर्त्ता उक्त होगा और कर्म, करण आदि अनुक्त होंगे। इसी प्रकार यदि क्रिया में कर्म अर्थ में प्रत्यय लगेगा तो कर्म उक्त होगा और कर्त्ता आदि अनुक्त होंगे।

अभिहिते तु–कर्म के अभिहित होने पर अर्थात् क्रिया आदि के द्वारा कर्मत्व उक्त होने पर उस कर्म में प्रातिपदिकार्थ मात्र में 'प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा' सूत्र से प्रथमा विभक्ति ही होगी। अभिधान प्रायः तिङ् प्रत्यय, कृत् प्रत्यय, तद्धित प्रत्यय और समास के द्वारा होता है। तात्पर्य यह है कि तिङ्, कृत्, तद्धित और समास के द्वारा कर्त्ता आदि उक्त होते हैं।[1]

हरिः सेव्यते (लक्ष्मी के द्वारा हरि की सेवा की जाती है)—यहाँ सेव्यते (सेव्+त) क्रिया में त (तिङ्) प्रत्यय कर्म अर्थ में लगा है। अतः 'हरि' का कर्मत्व क्रिया के द्वारा उक्त है। इसलिये उसमें प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति हुई।

लक्ष्म्या सेवितः (लक्ष्मी के द्वारा सेवित हरि)—यहाँ सेवितः (सेव् + क्त) क्रिया में क्त (कृत्) प्रत्यय 'कर्म' अर्थ में लगा है। अतः कर्म उक्त है और कर्त्ता अनुक्त। इसलिये अनुक्त कर्त्ता 'लक्ष्मी' में तृतीया विभक्ति हुई। **शतेन क्रीतः शत्यः** (सौ के द्वारा खरीदा हुआ अश्व आदि)—यहाँ 'शत्य' यद्यपि खरीदना क्रिया का कर्म है किन्तु शत्यः (शत + यत्) में यत् (तद्धित) प्रत्यय के द्वारा कर्म कह दिया गया है। अतः कर्म में द्वितीया विभक्ति नहीं हुई और प्रातिपदिकार्थ मात्र में प्रथमा विभक्ति हो गयी।

प्राप्तः आनन्दो यं स प्राप्तानन्दः (प्राप्त है आनन्द जिसको)—यहाँ बहुव्रीहि समास के द्वारा अन्य पदार्थ रूप 'कर्म' (जन) उक्त है। इसलिये कर्म में द्वितीया न होकर प्रातिपदिकार्थमात्र में प्रथमा हुई—प्राप्तानन्दो जनः।

क्वचित्–उपर्युक्त तिङ्, कृत्, तद्धित और समास के अतिरिक्त कहीं-कहीं निपात के द्वारा भी कर्त्ता, कर्म इत्यादि उक्त होते हैं। यथा—**'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्'** (विषवृक्ष को भी स्वयं बढ़ाकर फिर उसे काटना उचित नहीं होता, कुमारसम्भव, 2.55) यहाँ 'संवर्ध्य' एवं 'छेत्तुम्' दोनों ही क्रियाओं का कर्म है—विषवृक्ष। किन्तु असाम्प्रतम् (न साम्प्रतम्) के घटक साम्प्रतम् शब्द का अर्थ है 'युज्यते'। 'युज्यते' के द्वारा कर्म उक्त है। अतएव उसके समानार्थक 'साम्प्रतम्'

निपात के द्वारा भी कर्म (विषवृक्ष) उक्त हुआ। इसलिये उसमें प्रातिपदिकार्थ में प्रथमा विभक्ति हुई।

तथायुक्तं चानीप्सितम् (1।4।50)

ईप्सिततमवत् क्रियया युक्तमनीप्सितमपि कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्यात्। ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति। ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते।

(तथायुक्तम् + च + अनीप्सितम्) जिस प्रकार कर्त्ता का ईप्सिततम पदार्थ क्रिया के साथ युक्त होता है, उसी प्रकार यदि कर्त्ता के द्वारा न चाहा जाने वाला पदार्थ भी क्रिया के साथ युक्त हो, तो उसकी कर्म संज्ञा होती है।

इस सूत्र से उदासीन और द्वेष्य कर्म का संग्रह हो जाता है।

ग्रामं गच्छन् तृणं स्पृशति (वह गाँव जाते हुए तिनके को छूता है[1])—यहाँ कर्त्ता का ईप्सित है गाँव जाना, न कि तृण का स्पर्श। तिनका कर्त्ता का अत्यन्त अनीप्सित है किन्तु ईप्सिततम 'ग्राम' की भाँति वह भी गमन क्रिया से सटा हुआ है। अतएव प्रकृत सूत्र से उसकी कर्म संज्ञा हो जाती है और 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से उसमें द्वितीया विभक्ति हुई है। 'तृणम्' उदासीन कर्म का उदाहरण है। कर्त्ता स्पर्श करने के विषय में उदासीन है।

ओदनं भुञ्जानो विषं भुङ्क्ते (वह भात खाते हुए विष खा लेता है)—विष अनीप्सित है किन्तु किसी दुःख के कारण खाना पड़ता है। वस्तुतः कर्त्ता का इष्टतम है ओदन, न कि विष। किन्तु ओदन की ही भाँति विष के भी भोजन क्रिया से सटे होने के कारण प्रकृत सूत्र से उसकी कर्म संज्ञा होती है और 'कर्मणि द्वितीया' से उसमें द्वितीया विभक्ति हुई। यह द्वेष्य कर्म का उदाहरण है।

अकथितं च (1।4।51)

अपादानादिविशेषैरविवक्षितं कारकं कर्मसंज्ञं स्यात्।

दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथमुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

'दुहादीनां द्वादशानां तथा नीप्रभृतीनां चतुर्णां कर्मणा यद्युज्यते तदेवाकथितं कर्म' इति परिगणनं कर्त्तव्यमित्यर्थः। गां दोग्धि पयः। बलिं याचते वसुधाम्। अविनीतं विनयं याचते। तण्डुलान् ओदनं पचति। गर्गान्

शतं दण्डयति। व्रजमवरुणद्धि गाम्। माणवकं पन्थानं पृच्छति। वृक्षमवचिनोति फलानि। माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा। शतं जयति देवदत्तम्। सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति। देवदत्तं शतं मुष्णाति। ग्रामम् अजां नयति हरति कर्षति वहति वा। अर्थनिबन्धनेयं संज्ञा। बलिं भिक्षते वसुधाम्। माणवकं धर्मं भाषते अभिधत्ते वक्ति इत्यादि। कारकं किम्? माणवकस्य पितरं पन्थानं पृच्छति।

जहाँ अपादान आदि (करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण) कारक-विशेष अविवक्षित होते हैं, वहाँ कर्म कारक संज्ञा होती है। अर्थात् जब किसी कारक की अपादान आदि विशेष संज्ञा न कहनी हो तो उस कारक-सामान्य की भी कर्म संज्ञा हो जाती है। इन्हें अकथित, अप्रधान अथवा गौण कर्म कहते हैं। क्योंकि, वस्तुतः तो ये अन्य कारक होते हैं, किन्तु यदि वक्ता की इच्छा इन्हें करण आदि कहने की न हो तो इनके स्थान पर कर्म कारक का प्रयोग कर सकता है। करण आदि विवक्षित होने पर तृतीया आदि विभक्तियाँ ही आती है।

संस्कृत भाषा में सोलह धातुएँ ही ऐसी हैं जिनमें वक्ता स्वतन्त्र है। वह चाहे तो करण, सम्प्रदान इत्यादि का प्रयोग करे अथवा इनके स्थान पर कर्म का प्रयोग करे। इस प्रकार ये धातुएँ द्विकर्मक होती हैं अर्थात् इनके दो कर्म होते हैं—(1) साधारण कर्म—यह प्रधान अथवा मुख्य कर्म होता है और (2) अकथित कर्म—जो वस्तुतः अपादान इत्यादि कारक होता है। लेकिन विवक्षित न होने के कारण इस सूत्र से कर्म हो जाता है।

सोलह धातुयें ये हैं—दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना), प्रच्छ् (पूँछना), चि (चुनना), ब्रू (कहना), शास् (शासन करना), जि (जीतना), मथ् (मथना), मुष् (चुराना), नी (ले जाना), ह (हरण करना), कृष् (खींचना) और वह् (वहन करना)।

कारिका के पूर्वार्ध में गिनायी गयी दुह् आदि बारह धातुओं तथा उत्तरार्ध में गिनायी गयी 'नी' आदि चार धातुओं अर्थात् कुल सोलह धातुओं के कर्म (प्रधानकर्म) से जो युक्त (सम्बद्ध) होते हैं, उन्हें ही अकथित कर्म कहते हैं। यथा 'गां' दोग्धि पयः' में दोहन-क्रिया का कर्म है पयस् और पयस् से सम्बन्धित है गाय। इसलिये गाय अकथित कर्म है।

1. **गां दोग्धि पयः** (वह गाय से दूध दुहता है)—यहाँ 'गो' वस्तुतः अपादान कारक है, पर उसकी विवक्षा न होने से प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से उस अनभिहित कर्म में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ। यहाँ वक्ता 'गो'

को अपादान रूप में कहना नहीं चाहता, अपितु 'पयः' के प्रति निमित्त मानता है। इस वाक्य में 'पयः' प्रधान कर्म है और 'गाम्' गौण कर्म। जब अपादान कारक की विवक्षा होगी तो पञ्चमी विभक्ति का ही प्रयोग होगा—गोः पयः दोग्धि।

2. बलिं याचते वसुधाम् (हरि बलि से पृथिवी माँगते हैं)—यहाँ 'बलि' अपादान कारक है। किन्तु वक्ता 'बलि' को अपादान कारक न मानकर वसुधा का निमित्त मात्र मानता है, अतः प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ। 'वसुधा' प्रधान कर्म है और 'बलि' गौण कर्म। अपादान की विवक्षा होने पर 'बलेः याचते वसुधाम्' प्रयोग ही होगा।

3. तण्डुलान् ओदनं पचति (वह चावलों से भात पकाता है) यहाँ 'तण्डुल' करण कारक है, किन्तु वक्ता को 'तण्डुल' का करण कारकत्व अभीष्ट न होकर कारकत्वमात्र अभीष्ट है, अतः प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ। 'ओदन' प्रधान कर्म तथा 'तण्डुल' गौण कर्म है। करण की विवक्षा होने पर 'तण्डुलैः ओदनं पचति' वाक्य ही बनेगा।

4. गर्गान् शतं दण्डयति (गर्गों को सौ रुपये दण्ड देता है)—यहाँ 'गर्ग' वस्तुतः अपादान कारक है, किन्तु वक्ता अपादान की उपेक्षा कर कारकत्वमात्र कहना चाहता है, अतः अविवक्षा होने के कारण प्रकृत सूत्र से कर्म सञ्ज्ञा हुई और कर्मणि द्वितीया से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ। यहाँ 'शतम्' प्रधान कर्म है और 'गर्गान्' गौण कर्म। अपादान की विवक्षा होने पर 'गर्गेभ्यः शतं दण्डयति' वाक्य बनेगा।

5. व्रजम् अवरुणद्धि गाम् (वह बाड़े में गाय को रोकता है)—यहाँ 'व्रज' अधिकरण कारक है। किन्तु अविवक्षित होने के कारण प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति हुई। यहाँ 'गाम्' प्रधान कर्म है और 'व्रजम्' गौण कर्म। अधिकरण की विवक्षा होने पर 'व्रजे अवरुणद्धि गाम्' ही होगा।

6. माणवकं पन्थानं पृच्छति (वह ब्रह्मचारी लड़के से मार्ग पूछता है)—यहाँ 'माणवक' वस्तुतः करण कारक है किन्तु अविवक्षित होने से प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ। 'पन्थानम्' प्रधान कर्म है और 'माणवकम्' गौण कर्म। करण की विवक्षा होने पर 'माणवकेन पन्थानं पृच्छति' ही होगा। कुछ आचार्य माणवक को अपादान कारक मानते हैं—माणवकात् पन्थानं पृच्छति।

7. वृक्षम् अवचिनोति फलानि (वह वृक्ष से फलों को चुनता है)—यहाँ 'वृक्ष' अपादान है, अविवक्षित होने से प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से उसमें द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ। 'फलानि' प्रधान कर्म है और

'वृक्षम्' गौण कर्म। अपादान की विवक्षा होने पर 'वृक्षात् अवचिनोति फलानि' ही होगा।

8. 9. माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा (वह ब्रह्मचारी लड़के के लिये धर्म कहता है अथवा उपदेश करता है)—यहाँ 'माणवक' सम्प्रदान कारक है किन्तु अविवक्षित होने से प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति हुई है। 'धर्मम्' प्रधान कर्म है और 'माणवकम्' गौण कर्म। सम्प्रदान की विवक्षा होने पर 'माणवकाय धर्मं ब्रूते शास्ति वा' ही होगा।

10. शतं जयति देवदत्तम् (वह देवदत्त से सौ रुपये जीतता है)—यहाँ 'देवदत्त' वस्तुतः अपादान है किन्तु अविवक्षित होने के कारण प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' सूत्र से द्वितीया विभक्ति हुई। 'शतम्' प्रधान कर्म है और 'देवदत्त' गौण। अपादान की विवक्षा होने पर 'शतं जयति देवदत्तात्' होगा।

11. सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति (वह अमृत के लिये समुद्र को मथता है)—यहाँ 'सुधा' वस्तुतः सम्प्रदान है किन्तु सम्प्रदान की अविवक्षा होने के कारण प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति प्रयुक्त हुई। 'क्षीरनिधिम्' प्रधान कर्म तथा 'सुधा' गौण कर्म है। सम्प्रदान की विवक्षा होने पर 'सुधायै क्षीरनिधिं मथ्नाति' ही होगा।

बालमनोरमाकार के अनुसार यहाँ 'क्षीरनिधिं' वस्तुतः अपादान है और उसकी अविवक्षा होने के कारण प्रकृत सूत्र से उसकी कर्म संज्ञा होती है। 'सुधां' प्रधान कर्म है और 'क्षीरनिधिं' गौण कर्म है। अतएव अपादान की विशेष विवक्षा होने पर 'सुधां क्षीरनिधेः मथ्नाति' (क्षीर सागर से अमृत मथ कर निकालता है) ही होगा।

12. देवदत्तं शतं मुष्णाति (वह देवदत्त से सौ रुपये चुराता है)—यहाँ 'देवदत्त' वस्तुतः अपादान है किन्तु अविवक्षित होने के कारण प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति हुई। 'शतम्' प्रधान कर्म है और 'देवदत्तम्' गौण। अपादान की विवक्षा होने पर 'देवदत्तात् शतं मुष्णाति' ही होगा।

13. 14. 15. 16. ग्रामम् अजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा (वह गाँव में बकरी को ले जाता है, खींचता है, पहुँचाता है)—यहाँ 'ग्राम' वस्तुतः अधिकरण कारक है किन्तु अविवक्षित होने से प्रकृत सूत्र से कर्म संज्ञा हुई और 'कर्मणि द्वितीया' से द्वितीया विभक्ति का प्रयोग हुआ। 'अजाम्' प्रधान कर्म है और 'ग्रामम्' गौण कर्म। अधिकरण की विवक्षा होने पर 'ग्रामे अजां नयति हरति कर्षति वहति वा' ही होगा।

अर्थनिबन्धना0—'अकथितं च' सूत्र से दुह् आदि धातुओं के अपादान आदि

तृतीया विभक्ति

स्वतन्त्रः कर्त्ता (1।4।54)

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्त्ता स्यात्।

क्रिया की सिद्धि में स्वतन्त्र (प्रधान) रूप से विवक्षित अर्थ की कर्त्ता कारक संज्ञा होती है। तात्पर्य यह है कि किसी क्रिया में जो कारक प्रधान रूप से विवक्षित हो उसे कर्त्ता कहते हैं। क्रिया की निष्पत्ति में जो भी साधक होते हैं वे सभी कारक कहलाते हैं किन्तु उनमें जो स्वतंत्र अथवा प्रधान रूप से वक्ता को अभीष्ट होते हैं उन्हें कर्त्ता कारक कहते हैं। यह पहले भी कहा जा चुका है कि अन्य सभी कारक कर्त्ता से प्रेरित होते हें जबकि कर्त्ता कारक स्वतंत्रतया क्रिया का जनक होता है।

साधकतमं करणम् (1।4।42)

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं करणसंज्ञं स्यात्। तमब्ग्रहणं किम्? गङ्गायां घोषः।

क्रिया की सिद्धि में जो पदार्थ सबसे अधिक उपकारक (सहायक) होता है उसकी करण कारक संज्ञा होती है।

वैसे तो क्रिया की सिद्धि में सभी कारक उपकारक होते हैं किन्तु जो सबसे अधिक उपकारक होता है, वही करण कारक कहलाता है अर्थात् जिस कारक के व्यापार के तुरन्त पश्चात् क्रिया की सिद्धि हो जाय उस कारक को करण कहते हैं। यथा—'रामेण बाणेन हतो बाली' में बाण के व्यापार (बाली के शरीर में प्रवेश) के अनन्तर ही हनन क्रिया निष्पन्न हो जाती है। अतः हनन क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त उपकारक होने से बाण करण कारक है।

सूत्र में तमप् प्रत्ययान्त 'साधकतमम्' पद का ग्रहण क्यों किया? तमप् प्रत्ययान्त पद के प्रयोग से यह ज्ञापित होता है कि केवल प्रकृत सूत्र में ही गौण मुख्यन्याय की

प्रवृत्ति होती है, अन्य कारक सूत्रों में नहीं। अर्थात् केवल मुख्य (प्रधान) उपकारक की ही करण संज्ञा होती है जबकि अधिकरण कारक आदि स्थलों में मुख्य आधार (जैसे, तिलेषु तैलम्) तथा गौण आधार (जैसे—गङ्गायां घोषः) दोनों की ही अधिकरण संज्ञा होती है।

कर्तृकरणयोस्तृतीया (2।3।18)

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्। रामेण बाणेन हतो वाली।

अनुक्त कर्त्ता तथा करण कारक में तृतीया विभक्ति होती है।

रामेण बाणेन हतो वाली (राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया)—यहाँ हनन क्रिया में 'बाण' सबसे अधिक उपकारक है अतः 'साधकतमं करणम्' सूत्र से उसकी करण संज्ञा हुई और प्रकृत सूत्र से उसमें तृतीया विभक्ति का प्रयोग हुआ।

हनन क्रिया में प्रधान कारक 'राम' की 'स्वतन्त्रः कर्त्ता' सूत्र से कर्त्ता संज्ञा होती है और क्रिया (हतः—हन् + क्त कर्म अर्थ में) के द्वारा अनुक्त होने के कारण प्रकृत सूत्र से कर्त्ता 'राम' में भी तृतीया विभक्ति हुई।